UNIVERSAL LIBRARY
OU_180533
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·3/N45S Accession No. G.H. 1113

Author नरोत्तमदास

Title सुदामा-चरित्र । 1945

This book should be returned on or before the date last marked below.

सुदामा-चरित

सम्पादक

श्री ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

मूल्य चार आना

प्रकाशक—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,

प्रयाग।

तृतीय संस्करण १०००

मुद्रक—

माधो प्रिन्टिंग वर्क्स, बैरहना,

इलाहाबाद।

तीसरा संस्करण

'सुदामा-चरित' का यह तीसरा संस्करण है। यह सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के पाठ्य-क्रम में निर्धारित है। इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में विद्वान सम्पादक ने सम्वत् १६६३ में लिपिबद्ध सुदामाचरित की प्रति का आधार लिया है। साथ ही इस समय की प्रकाशित सुदामा-चरित की अन्य प्रतियों के पाठों पर भी दृष्टि रखी गई है। आशा है कि साहित्य के विद्यार्थी और हिन्दी-प्रेमी विद्वान संपादक की कृति का अवश्य आदर करेंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग।
मई ५, १९५०

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल,
साहित्य मंत्री,

भूमिका

सुदामा-चरित के लेखक—कविवर नरोत्तमदास का जन्म सीतापुर जिले 'बाड़ी' नामक ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके समय के विषय में 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि सम्वत् १६०२ में ये अवश्य वर्तमान थे। इसी के आधार पर विद्वानों ने अनेक कल्पनाएँ की हैं। परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि विशेष सामग्री उपलब्ध न होने के कारण इनके जन्म और मरण की निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती। जिस हस्तलिखित प्रति के आधार पर इस संस्करण की रचना की गई है वह पं० बालकराम दुबे सीतापुर जिलान्तर्गत 'बरेड़ी' अथवा 'बोड़ी' नामक ग्राम के निवासी द्वारा लिखी गई थी। इस प्रति पर सम्वत् १६६३ माघ मास सुदी पञ्चमी अंकित है। यह प्रति मुझे अपने परम मित्र पं० शिवदास अवस्थी उन्नाव जिले के सुमेरपुर ग्राम के निवासी की कृपा से देखने को मिली थी। अतः मुख्यांश में इसके लिए मैं उन्हीं का कृतज्ञ हूँ। भली-भाँति देखने से यह हस्तलिखित प्रति वास्तव में अत्यन्त प्राचीन ठहरती है तथा इससे अधिक प्राचीन प्रति अभी तक मेरे देखने में नहीं आई।

मध्ययुग के इस छोटे से काव्य में कथा का अंश विशेष बड़ा नहीं है। यह कहना भी अनुचित होगा कि कविवर नरोत्तमदास ने इस कथा को केवल अपने ही मन से गढ़ा था। कृष्ण और सुदामा की मैत्री तो पुराण प्रसिद्ध एक प्राचीन आख्यान ही है। कविवर नरोत्तमदास जी ने उसे ब्रज भाषा के साँचे में ढाल दिया है। अत्यन्त दीन ब्राह्मण सुदामा एक दिन सहसा अपनी स्त्री से कृष्ण की मैत्री का वर्णन कर बैठते हैं। इसी समय से पति-परायणा ब्राह्मणी उन्हें कृष्ण के पास जाकर भेंट करने के लिए प्रेरित करने लगती है। इच्छा न रहते हुए भी त्रिया हठ के सामने ब्राह्मण को झुकना ही पड़ता है। सुदामा द्वारका के लिए प्रस्थान करते हैं। दैन्य का संकोच, दुर्बल शरीर, मंजिलें तै करना तथा अन्तर्निहित आत्म-सम्मान की स्वाभाविक भावना पग-पग पर सजीव होकर सामने आ जाती है। मित्र से मिलने के लिए कृष्ण की आतुरता, उनका वह हार्दिक स्नेह और पवित्र प्रेम नेत्रों से निकल कर परात में उमड़ पड़ता है। उनका वह सर्वस्व दान तथा थोड़ा सा मजाक भी इस छोटी सी कहानी में जान डाल देता है।

गरीबी की मुसीबतें, ब्राह्मणत्व का आत्म-सम्मान एवं त्याग और सन्तोष सुदामा के चरित्र की विशेषताएँ हैं। इनका अन्तर्द्वन्द्व एवं जीवन की सादगी और उसका भोलापन काव्य में

आदि स अन्त तक एक से निभ जाते हैं। ब्राह्मणो की आतुरता किन्तु पति के प्रति उसका शील तथा उसकी विनय भी कम सराहनीय नहीं है। दो अभिन्न-हृदय मित्रों की भेंट तथा उनके हृदय की कोमलता का स्वाभाविक और सजीव चित्रण पत्थर को भी पिघला कर पानी कर सकता है। शान्त और करुणरस-प्रधान यह छोटा सा खण्ड-काव्य मध्य कालीन हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है। सरलता और माधुर्य यही इस काव्य की विशेषताएँ हैं। हाँ, कहीं-कही छन्दों में और विशेष कर वस्तु-वर्णन में कुछ शिथिलता दीख पड़ती है परन्तु जहाँ मानव भावनाओं का चित्रण है, वे स्थल तो कवि की लेखनी के जीते जागते चित्र हैं।

इसके बाद और भी कुछ कवियों ने इसके अनुकरण करने की चेष्टा की परन्तु सफल न हो सके। आधुनिक युग में भी कुछ कवियों ने व्यर्थ चेष्टा अनुकरण की की है परन्तु वे इसकी छाँह तक नहीं छू पाते। प्रस्तुत पुस्तक के मुख्यतः दो संस्करण देखने मे आते हैं। (१) पहला तो भार्गव बुक डिपो, बनारस से छपा है तथा (२) दूसरा ओंकारबन्धु आश्रम, प्रयाग से। मैंने यथासम्भव चेष्टा की है कि उपर्युक्त हस्तलिखित प्रति के आधार पर इस संस्करण को लिखते हुए भी इन संस्करणों के अंशों के भिन्न पाठ देता जाऊं। अतः टिप्पणियों मे (१) को मैंने (भा० प्र०) तथा (२) को (ओ० प्र०) के संकेत से लिखा है।

मूल काव्य की स्वाभाविक सरलता के कारण इस संस्करण में मैंने विशेष टिप्पणियों की आवश्यकता नहीं समझी है, अतः पाठकगण क्षमा करेंगे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय,
रामनवमी (३१-३-२६)

ललिताप्रसाद सुकुल

श्री गणेशायनमः

सुदामा-चरित्र

दोहा—श्री गनेश सुमिरन करूँ[१], उपजै बुद्धि प्रकास[२]।
सो चरित्र बरनन करूँ[३], जासों दारिद नास[४] ॥१॥

प्रकास = उज्ज्वल

ज्यों गंगा जल पान तें, पावत पद निर्वान।
त्यों सिन्धुर[१]-मुख बात तें, मूढ़ होत बुधिवान ॥२॥

निर्वान = इस शब्द का प्रयोग पहले पहल बुद्ध भगवान ने किया था; परन्तु मुक्ति के अर्थ में नहीं। उनके बाद प्रायः इसका अर्थ लोग मुक्ति ही समझते हैं।

सिन्धुरमुख बात = श्री गणेश जी की कथा।

१—१ करौं (ह० प्र०)
२ प्रकाश (भा० प्र०)
३ करौं (ओ० प्र०)
४ नाश (भा० प्र०)

२—१ सुन्दर मुख (भा० प्र०) यह नितान्त अर्थहीन है।

कृस्न-मित्र के जन्म को, ताको बरनन कीन्ह ।
सुख सम्पति माया मिलै, सो उपदेस जु दीन्ह ॥३॥

दूसरे चरण मे 'जु' शब्द बिल्कुल अर्थहीन है ।

सुदामा और कृष्ण के विषय में कथा प्रचलित है कि ये अनादि काल से एक दूसरे के मित्र होते चले आए हैं ।

विप्र सुदामा बसत हैं, सदा आपने धाम ।
भिक्षा[१] करि भोजन करैं, हिये जपैं[२] हरि नाम ॥४॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहे वेद की रीति ।
सुलज[१] सुसील, सुबुद्धि अति, पति सेवा में[२] प्रीति ॥५॥
कही सुदामा एक दिन, कृस्न हमारे मित्र ।
करत रहति उपदेस तिय, ऐसो परम विचित्र[१] ॥६॥
महाराज जिनके हितू[१], हैं हरि यदुकुल चंद ।
ते दारिद सन्ताप ते, रहैं न क्यों निरद्वन्द ॥७॥

निरद्वन्द = बेफिक्र ।

३—यह दोहा (ह० प्र०) तथा (ओ० प्र०) में मिलता है परन्तु (भा० प्र०) में बड़े ही अशुद्ध ढंग से दिया गया है ।

४—१ भीख मांगि (ओ० प्र०)
२ जपत ,,

५—१ सलज ,,
२ सों (ओ० प्र०)

६—१ पवित्र (भा० प्र०)

७—१ 'महा दानि जिनके हितू' (ओ० प्र०)

कह्यो सुदामा बाम सुनु, वृथा और सब भोग ।
सत्व, भजन भगवान को, धर्म सहित जप-भोग ॥८॥

भोग=सांसारिक सुख—भगवान का भजन तथा उनके पवित्र नाम का स्मरण यही सत्य है। इसमें भक्ति मार्ग का ऊँचा उपदेश सन्निहित है।

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे[१] मैं बैजन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म धरे[२] हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम सन्दीपनि गुरू के पास,
तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरैंगे[३] पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥ ९॥

रूपक—'छेकानुप्रास', वृत्यानुप्रास तथा श्रुत्यानुप्रास क्रम से लाए गए हैं।

प्रथम चार पंक्तियों में श्री कृष्ण जी का रूप विष्णु के अवतार का ध्यान रखकर वर्णित किया गया है।

९—१ गले (भा० प्र०)
२ लिए (ओ० प्र०)
३ हरेंगे (ओ० प्र०)

पाँचवीं पंक्ति में 'कहत' शब्द की पुनरुक्ति हुई है जो काव्य की दृष्टि से दोषयुक्त है।

संदीपनि = एक प्रकार की विद्या, परन्तु कुछ टीकाकारों ने इसे गुरु का नाम लिखा है।

सिच्छक हौं सिगरे जग को,
तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सुधारत[१],
सम्पति की तिनके[२] नहिं इच्छा॥
मेरे हिये हरि के पद पंकज,
बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को[३] धन चाहिये बावरि,
बांभन के[४] धन केवल भिच्छा॥१०॥

सिगरे = समस्त के लिये ब्रजभाषा में सिगरे का ही प्रयोग करते हैं।

बावरि—वास्तविक अर्थ है पागलपन; परन्तु यहाँ अज्ञान के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।

१०—१ सिधारत (भा० प्र०)
२ तिनको (भा० प्र०)
३ के (भा० प्र०)
४ को (ओ० प्र०)

भिच्छा = भिक्षा — अर्थात् विशेष धन तथा वैभव की ब्राह्मण को आवश्यकता नहीं रहती।

सिच्छक = शिक्षक। सिच्छा = शिक्षा। हिये = हृदय में। परिच्छा = परीक्षा। बांभन = ब्राह्मण। भिच्छा = भिक्षा।

दानी बड़े तिहुँ लोकन में,
जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भलो विधि,
सिद्ध करो पिय मेरो मतौ लै।
दीनदयाल के द्वार न जात सो,
और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्रीजदुनाथ से जाके हितू सो,
तिहूँपन क्यों कन मांगत डोलै ॥११॥

लै = लेकर। मेरो मतौ लै = मेरी राय मानकर। दीन ह्वै बोले = दीन होकर बोलता है। हितू = मित्र। तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै = अब तीसरेपन में अर्थात् वृद्धावस्था में भी दाना माँगता फिरे।

कन = अन्नकण। डोलै = माँगत फिरै। तिहुं = तीनों।

क्षत्रिन के पन जुद्ध जुवा,
सजि बाजि चढ़ै गजराजन ही।

बैस के बानिज और कृसी पन,
सूद को सेवन साजन[१] ही।
बिप्रन के पन है जु यही,
सुख सम्पति को[२] कुछ काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है,
कन मांगत बांभनै[३] लाज नहीं ॥१२॥

इसमें 'पन' शब्द, जिसका शुद्ध रूप है 'प्राण', जीवन व्यवसाय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। व्रजभाषा में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है; अतः इसे लौकिक प्रयोग कहना चाहिये।

छत्रिन के = क्षत्रियों के। जुद्ध = युद्ध। जुवा = द्यूत। बैस = वैश्य। बानिज = वाणिज्य। कृसी = कृषी। सूद = शूद्र। सेवन = सेवा। कन = कण। बांभनै = ब्राह्मण को। लाज = लज्जा।

कोदों सवां जुरतो[१] भरि पेट,
न चाहति हौं[२] दधि-दूध मिठौती।

१२—१ नीति यही (भा० प्र०) परन्तु यह अशुद्ध है।
२ सों (भा० प्र०)
३ ब्राह्मण (भा० प्र०)
१३—१ जुरवो (भा० प्र०) यह अशुद्ध जान पड़ता है।
२ हैं (भा० प्र०)

सीत वितीत भयो सिसियातहिं,
हौं हठती[३] पै[४] तुम्हैं न पठौती।
जौ जनती न हितू हरि सों,
तुम्हैं[५] काहे को द्वारिका ठेलि पठौती।
या घरते न गयो कबहूँ, पिय!
टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥१३॥

कोदों सवां=एक प्रकार के सस्ते अन्न हैं जो देहातों में ग़रीब किसान खाया करते हैं। जुरतो भरि पेट=पेट भर के मिल जाता। मिठौती=मिठाइयां। हौं हठती पै=तो क्या मैं कभी हठ करती। ठेलि पठौती='ठेल कर भेजना' पूर्वीय बोलियों में मुहावरा है जिसका अर्थ होता है जबरदस्ती भेजना।

वितीत=व्यतीत। हितू=इष्ट करने वाले मित्र। कठौती=काष्ठ का बना हुआ बरतन।

छांड़ि[१] सबै जक[२] तोहि लगी बक,
आठहु जाम यहै जिय[३] ठानी।

---

३ हटती (भा० प्र०)
४ पै (ओ० प्र०) अर्थहीन सा है।
५ तो मैं (भा० प्र०)
१४—१ छोड़ि (भा० प्र०) २ झक (भा० प्र०)
३ मन (ओ० प्र०)

जातहिं दैहैं लदाय लढ़ाभरि,
लैहौं लदाय यहै जिय जानी ॥
पैहौं[४] कहाँ ते अटारी अटा,
जिनके विधि दीन्ही है टूटी[५] सी छानी ।
जो पै दरिद्र लिख्यो है लिलार,
तो[६] काहू पै मेटि न जात अजानी ॥१४॥

लढ़ाभरि = ब्रजभाषा में 'लढ़ा' कहते हैं माल ढोने वाली गाड़ियों को, सुदामा उसी मुहावरे को लेकर तानेजनी करते हैं कि जाते ही शायद मित्र कृष्ण गाड़ियाँ भरकर सारा सामान देंगे। फिर कहते हैं कि उन सब सामानों को रखने के लिये कमरे और गोदाम कहाँ से आवेंगे क्योंकि वहाँ पर तो टूटी सी झोपड़ी है।

आठहु याम = आठों पहर। जिय ठानी = मन में निश्चय सा कर चुकी है। जातहिं = पहुँचते ही। दैहैं लदाय = लदा देंगे। लैहौं लदाय = लदा ले आऊँगा। पैहौं कहाँ ते = कहाँ से पाऊँगा। अटारी अटा = कोठे और अट्टालिका। छानी = झोपड़ी। लिलार = ललाट-भाग्य। अजानी = अज्ञान।

---

४ पावैं (आ० प्र०)

५ छोटी (भा० प्र०)

६ ते कहि को मेटन भार ऊचानी (भा० प्र०)

पूरन पैज करी प्रहलाद की,
खम्भ सों बांध्यो पिता जिहि बेरे[१] ।
द्रौपदी ध्यान धरयो जबहीं,
तबहीं पट कोटि लगे चहुँ फेरे ॥
ग्राह ते छूटि गयन्द गयो पिय,
याहि[२] सो है निहचै जिय मेरे ।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं वे,
कृपानिधि लोचन-कोर के हेरे[३] ॥१५॥

पैज = टेक, प्रतिज्ञा । जिहि बेरे = जिस समय । चहुँफेरे = चारों ओर । याहि सो है = जरा सी दया दृष्टि से देखकर ही ।

[गयन्द = गजेन्द्र । निहचै = निश्चय ।]

इसमें प्रहलाद, द्रौपदीचीरहरण, गज और ग्राह के प्रसंग क्रम से आये हैं ।

चकवे चौकि[१] रहे चकि से,
तहाँ भूले से भूप कितेक[२] गिनाऊं ।

१५—१ टेरे (भा० प्र०) अर्थहीन ।
२ है हरि को निहचै जिय मेरे । (ओ० प्र०)
३ फेरे (भा०प्र०)
१६—१ चौंकि (ओ० प्र०)
२ अनेक (ओ० प्र०)

देव गन्धर्व औ किन्नर जच्छ से,
सांझ लौं ठाढ़े रहैं[१] जिहि ठाऊं ।।
ते दरबार बिलोक्यों नहीं अब,
तोहि कहा कहिके[२] समझाऊँ ।
रोकिए लोकन के मुखिया,
तहँ हौं दुखिया किमि पैरुन पाऊँ ।।१६।।

चक्कवे=चक्रवर्ती । चौकि=चौकी का प्रयोग ड्योढ़ी के अर्थ में बोलियों में किया जाता है । अतः यहाँ इसका अर्थ है कि चक्रवर्ती महाराजे जहाँ पर द्वारपालों के समान खड़े रहते हैं । भूले से=अचम्भित होकर । कितेक=कितने । सांझ लौं= प्रातःकाल से शाम तक । ते दरबार बिलोक्यों नहीं अब=ऐसे दरबार की ओर मैंने अब तक आँख क्यों नहीं उठाई यह तुझे कैसे समझाऊँ ।

लोकन के मुखिया=बड़े-बड़े लोकों के अग्रणी मुखिया जहाँ द्वार पर ही रोक लिए जाते हैं ।

१६—१ देखि खरे (ओ० प्र०)
२ कहिए (भा० प्र०)

भूल से भूप अनेक खरे[१] रहौ,
ठाढ़े रहौं[२] तिमि चक्कवै भारी।
देव गन्धर्व औ किन्नर जच्छ से,
मेलो[३] करैं तिनकौ अधिकारी॥
अंतरयामी ते आपुही जानिहैं,
मानौ यहै सिखि आजु[४] हमारी।
द्वारिकानाथ के द्वार गए,
सब ते पहिलेसुधि लैहैं तिहारी॥१७॥

इसमें हृदय का स्वाभाविक संबंध बड़ी स्पष्टता से वर्णित किया गया है।

खरे रहौं=खड़े रहे। जच्छ=यक्ष। मेलो करैं=ढकेला करते हैं। लैहैं=लेंगे।

दीन दयाल को ऐसोई द्वार है,
दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदी तैं गज तैं प्रहलाद तैं,
जानि परी ना बिलम्ब लगाई॥

१७—१ खड़े रहैं (भा० प्र०)
२ थके (भा० प्र०)
३ रोके जे लोकन के (ओ० प्र०
४ लेह (ओ० प्र०)

याही ते भावति मो मन दीनता-
जौ निबहै निबहै जस आई।
जौ ब्रजराज सौं प्रीति नहीं,
केहि काज सुरसहु की ठकुराई ॥१८॥

१८—तैं = से। मो मन = मेरे मन में। जौ = जो; यदि। निबहै = निभ जाय, निर्वाह हो जाय। ठकुराई = प्रभुता।

फाटे पट टूटी छानि खाय भीख मांगि[१] मांगि,
बिना यज्ञ[२] विमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबन्धु दुखी देखि कै दयालु ह्वै हैं,
दैहैं कछु जौ[३] सौं हौं जानत अगन्तई[४] ॥
द्वारिका लौं जात पिया! एतो अरसात[५] तुम,
काहे कौ लजात भई कौनसी विचित्रई।
जौ पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायौ तोपै,
कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥१९॥

१९—छानि = झोपड़ी। पित्रई = पितृगण। अगन्तई = पहले से ही। अरसात = आलस्य करते हो।

१९—१ आन (ओ० प्र०)
२ जांए (ओ० प्र०)
३ भलौ (ओ० प्र०) भीखौ (भा० प्र०)
४ अगई (ओ० प्र०)
५ अलसात (ओ० प्र०)

विचित्रई और मित्रई ये केवल तुक बैठाने के लिये प्रयुक्त किए गए हैं; अन्यथा इनका शुद्ध रूप होता है 'विचित्रता' और 'मित्रता'। परन्तु 'मित्रई' का रूप आगे चल कर 'मिताई' हो जाता है और यह ब्रजभाषा में काफी प्रचलित है।

तैं तो कही नीकी सुनु बात हित ही की।
यही रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए।
चित्त[१] के मिलेते चित्त धाइए परसपर,
मित्र के जौ जेइए तौ आपहू जेंवाइए॥
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाइ कहा सकुचाइए।
दुख सुख के दिन तौ अब काटे ही बनैंगे भूलि,
बिपत परे पै द्वार[२] मित्र के न जाइये॥२०॥

२०—तैं=तूने। सरसाइये=बढ़ाइये। जेंइये=भोजन कीजिये।

बिप्रन[१] के भगत जगत के विदित बन्धु,
लेत सब ही की सुधि ऐसे महा दानि हैं।
पढ़े एक चटसार कही तुम कय बार,
लोचन अपार वै तुम्हैं न पहिचानि हैं॥

२०—१ मित्र (ओ० प्र०)

२१—१ विप्र (ओ० प्र०)

एक दीनबन्धु, कृपासिन्धु फेरि गुरुबन्धु,
तुम सम को दीन जाहि निजजिय जानिहैं।
नाम लेत चौगुनी, गये ते द्वार सौगुनी सों,
देखत सहस्रगुनी, प्रीति प्रभु मानिहैं ॥२१॥

चटसार = गुरुगृह।

प्रीति में चूक नहीं[१] उनके हरि,
मो[२] मिलि हैं उठि कण्ठ लगाय कै।
द्वार गये कछु दै हैं पै दै हैं,
वे द्वारिका नाथ जू हैं सब लायकै॥
जे[३] बिधि बीति गये पन द्वै,
अब तो पहुँचो बिरधापन आयकै॥
जीवन[४] शेष अहै दिन केतिक,
होहुँ हरी सों कनावड़ो जाय कै ॥२२॥

चूक = कमी। मो = मुझसे। दैहैं पै दैहैं = अवश्य देंगे। लाय कै = लायक, योग्य। केतिक = कितना। कनावड़ो = आभारी।

२२—१ दहै (ओ० प्र०)
२ सों (भा० प्र०)
३ या (ओ० प्र०)
४ 'जीवन् कै तौ है जाके लिए' (ओ० प्र०)

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं,
जौं हितू दीन दयालु सों पाइए।
तौनिहू[1] लोक के ठाकुर जे,
तिनके दरबार न[2] जात लजाइए॥
मेरी कही जिय मैं धरि कै पिय,
भूलि न और प्रसङ्ग चलाइए।
और के द्वार सों काज[3] कहा पिय,
द्वारिका नाथ के द्वारे सिधाइए॥२३॥

हूजै=हो जाना चाहिए। ठाकुर=स्वामी। सिधाइये=जाइए।

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहू जू,
आठहु जाम यहै झक तेरे।
जौं न कहौं करिये तौ बड़ो दुख,
जैये कहां अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छरिया तहं,
भूपति जान न पावत नेरे।
पांचु सुपारि तौ देखु बिचारि कै,
भेंट को चारि न चांवर मेरे॥२४॥

२३—१ 'जो तिहुँलोक के ठाकुर हैं' (भा० प्र०)
२ 'गए न लजाइए' (भा० प्र०)
३ काम (भा० प्र०)

जाम = याम। झक = हठ, रट। जा न कहौ करिये = यदि तेरा कहा न मानै। हेरे = देख करि। छरिया = द्वारपाल, जो दण्ड धारण किये रहते हैं। नेरे = समीप।

यहि सुनि कै तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास।
पाव सेर चाउर लिये, आई सहित हुलास ॥२५॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बांधि दुपटिया खूंट।
मांगत खात चले तहां, मारग बाली-बूंट ॥२६॥

दुपटिया = पगड़ी। खूंट = पोटली। मारग बाली-बूट = गेहूँ की बालें तथा चने का बूट। [मारग का शुद्ध रूप है मार्ग]

तीन दिवस चलि विप्र के, दूखि उठे जब पांय।
एक ठौर सोए कहूँ, घास पयार बिछाय ॥२७॥
अन्तरजामी आपु हरि, जानि जगत की पीर।
सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर ॥२८॥

अन्तरजामी = अन्तर्यामी।

प्रात गोमती दरस तें, अति प्रसन्न भो चित्त।
विप्र तहां असनान करि, कीन्हो नित्त निमित्त ॥२९॥

दरस = दर्शन। असनान = स्नान। नित्तनिमित्त = नित्य नैमित्तिक।

भाल तिलक घसि कै दियो, गही सुमिरिनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयो अनाथ सनाथ ॥३०॥

सुमिरिनी = माला, द्वारावती = द्वारिकापुरी।

दीठि चकाचौंधि गई देखत सुबर्नमई,
एक ते सरस[1] एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिनु कोऊ कहूँ काहू सों न बात करे,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं॥
देखत सुदामा धाय पौरजन गहे पांय,
कृपा करि कहो विप्र कहां कीन्हों गौन है।
धीरज अधीर के हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहाँ कौन है॥३१॥

दीठि = दृष्टि। सुबर्नमयी = स्वर्णमयी। भौन = भवन। कहाँ कीन्हों गौन = कहाँ चले।

दीन जानि काहू पुरुस, कर गहि लीन्हों आय।
दीन द्वार ठाढ़ो[1] कियो, दीन दयाल के जाय ॥३२॥

पुरुस = पुरुष। गहि लीन्हों = पकड़ लिया।

३१—१ सरस (ओ॰ प्र॰)

३२—१ खरो (ओ॰ प्र॰)

द्वारपाल द्विज जानि कै, कीन्हीं दण्ड प्रनाम।
विप्र कृपा करि भाषिये, सकुल आपनो नाम ॥३३॥

भाषिए=कहिए।

नाम सुदामा, कृस्न हम, पढ़े एकई साथ।
कुल पांडे वृजराज सुनि, सकल जानि हैं गाथ ॥३४॥

गाथ=विवरण, हाल।

द्वार पाल चलि तहं गयो, जहाँ कृस्न यदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय ॥३५॥

सीस पगा न झँगा तन में,
प्रभु! जाने को आहि बसे केहि ग्रामा ॥
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु,
पाँय उपानह[1] की नहिं सामा ॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक,
रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ॥
पूछत दीन दयाल को धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा ॥३६॥

पगा=पाग, साफा। झँगा=पुराने ढंग का कुर्ता। लटी-दुपटी=जीर्ण अँगोछा। उपानह की नहिं सामा=पैर में

३६—१ उपाहन (ओ० प्र०)

जूते भी नहीं हैं। रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा = यहाँ के ठाट-बाट से चकित सा हो गया है।

बोल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पांडे' सुनि,
छाँड़े राज काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेटे[1] भरि अंक लपटाय दुख साने को।
नैन दोऊ जल भरि पूछत कुसल हरि,
विप्र बोल्यो विपदा में मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम करी तैसी करै को दया के सिन्धु,
ऐसी प्रीति दीन बन्धु ! दीनन सो मानै को ॥३७॥

गहे = पकड़ लिए।

लोचन पूरि रहे जलसों,
प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के,
कलपद्रुम के हिय माझ खसेट्यो[1] ॥
कम्प कुबेर हिय सरस्यो,
परसे पग जात सुमेरु ससेट्यो।
रंक ते राउ भयो तबहीं,
जबहीं भरि अंक रमापति भेट्यो ॥३८॥

३७—१ भेंट (भा० प्र०)
३८—१ खखेट्यो (ओ० प्र०)

सुरनायक = इन्द्र, जो सदा ही ईर्षालु है। हिय माँझ खसेट्यो = हृदय में खरोंच सी लग गई। सरस्यो = प्रवेश कर गया। समेट्यो = सिमटता जाता था, संकुचित होता था।

भेंटि भली विधि विप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय।
अन्तःपुर को लै गए[१], जहाँ न दूजो जाय ॥३९॥
मनि मंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय।
पानी धरयो परात में, पग धोवन को लाय ॥४०॥

मनि मंडित = मणियों से जड़ी हुई।

राजरमनि[१] सोरह सहस, सब सेवकन समीत[२]।
आठो पटरानी भईं, चितै चकित यह प्रीत ॥४१॥

समीत = सहेलियों सहित। चितै = देख कर।

जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत सन्ताप।
पांय सुदामा विप्र के धोवत ते हरि आप ॥४२॥

सलिल = जल।

ऐसे बेहाल बिवाइन सों,
पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।

३९—१ लै चले (ओ० प्र०)

४१—१ राज रमन (ओ० प्र०)
२ समेत (भा० प्र०)

हाय महा दुख पायो सखा तुम,
आए इतै न कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दसा,
करुना करि कै करुना निधि रोए ।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये ॥४३॥

बेहाल = बुरी दशा। नंगे पैर इधर-उधर घूमने से पैरों में दरारें सी पड़ जाती हैं जिनसे कष्ट भी होता है; इसे 'बिवाई' कहते हैं। जोए = देखा।

नोट-प्रीति तथा करुणा की पराकाष्ठा इस वर्णन में होगई है।

धोय पाँय पट-पीत सों, पोंछत हैं जदुराय ।
सतिभामा सों यों कही करो रसोई जाय ॥४४॥

पट-पीत सों = पीताम्बर से।

तन्दुल तिय दीने हते आगे धरियो जाय ।
देखि राज-सम्पति विभव, दै नहिं सकत लजाय ॥४५॥

लजाय = लज्जित होकर।

अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की रीति ।
सुहृद सुदामा विप्र सों प्रगट जनाई प्रीति ॥४६॥

कुछ भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहो कहो केहि हेति ॥४७॥

चाँप पोटरी काँख में = बगल में चावलों की पोटली दबाए हुए हो।

आगे चना गुरुमातु दए ते,
लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यो मुसुकाय सुदामा सों,
चोरी की बान में हौ जू प्रबीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजो तुम,
तैसई भाभी के तन्दुल कीने ॥४८॥

ते = वे; थे। बानि = आदत। प्रबीने = कुशल।

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुरि परयो[१], बिथिर गये तेहि ठौर ॥४९॥

चितवत = देखते हैं। ओर = तरफ। ठौर = स्थान पर।

एक मुठी हरि भरि लई, लीन्हीं मुख में डारि।
चबत चबाउ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि ॥५०॥

चबाउ = कानाफूसी करना।

४९—१ गरे (ओ० प्र०)

काँपि उठी कमला मन सोचत,
मोसों कहा हरि को मन ओंको ?
ऋद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी,
नवनिद्धि कँपी बम्हना यह धौं को ?
सोच भयो सुरनायक के,
जब दूसरी बार लियो भरि झोंको ।
मेरु डरयो बकसे निज[१] मोहिं,
कुबेर चबावत चाउर चोंको ॥५१॥

ओंको = फिर गया है। धौं को = ब्रज और अवधी में यह एक प्रश्नवाचक मुहावरा है। झोंको = मुट्ठा। बकसे = बख्श (फारसी) देना अर्थात् बचा देना। चाउर = चावल। चोंको = चौंक गया, अचम्भित हो गया।

हूल हियरा में सब कानन परी है टेर,
भेंटत सुदामा स्याम चाबि न अघात हो।
कहै नर उत्तम[१] रिधि सिद्धिन में सोर भयो,
ठाढ़ी थर हरै और सोचे कमला तहीं ॥
नाक लोक नाग लोक, ओक-ओक थोक-थोक,
थाढ़े थरहरे मुख सूखे सब गात ही।

५१—१ जनि (ओ० प्र०)

५२—१ नरोत्तम (ओ० प्र०) इससे छन्द भंग होता है।

हाल्यो परयो थोकन में, लालो परयो लोकन में,
चाल्यो पर्यो चक्रन में चाउर चबात हीं ॥५२॥

हूल हियरा = हृदयों में घबड़ाहट उत्पन्न हो गई। टेर = हाँक। न अघात = सन्तुष्ट नहीं होते। थरहरै = कम्पित होती हैं। नाक लोक = स्वर्ग लोक। ओक = स्थान। थोक = झुंड के झुंड। हाल्यो परयो = शोर मचा हुआ है। चाल्यो परयो चक्रन = कालचक्र भी विचलित हो उठे क्योंकि यहीं से तो दीन सुदामा का भाग्य पलटा खाता है; अतः कालचक्र का चलायमान हो जाना स्वाभाविक ही है।

भौन भरो पकवान मिठाइन,
लोग कहें निधि हैं सुखमा के
साँझ सबेरे पिता अभिलाखत,
दाखन चाखत सिन्धु छमा के।
बाभन एक कोउ दुखिया सेर-
पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिए,
तेहि बैठि चबात हैं[१] कन्तरमा के॥५३॥

दाखन = नक्का, एक प्रकार का मेवा। चाखत = चखते हैं।

५३—१ चबात कन्तरमा के (भा० प्र०) किन्तु इस प्रकार छन्द भंग हो जाता है।

सिन्धु क्षमा के = क्षमा के सागर अर्थात् श्रीकृष्ण जी। पावक = लगभग सवा सेर, 'क' प्रत्यक्ष लगा देने से लगभग का अर्थ होता है। सर्मा = सांवा; एक प्रकार का चावल।

मुठी[1] तीसरी भरत ही, रुकमिनि पकरी बांह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, सम्पति की अनचाह ॥५४॥
कहो रुकमिनी कान में, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामा आपु सों, होत सुदामा आपु ॥५५॥

क्यों रस में विष बाम कियो,
अब और न खान दियो एक फंका।
विप्रहिं लोक तृतीयक देत
करी तुम क्यों अपने मन संका॥
भामिनि मोहि जेंवाइ भली विधि
कौन रह्यो जग में नर रंका।
लोक कहै हरि मित्र दुखी
हमसों न सह्यो यह जात कलंका ॥५५ अ॥

भागव हू सब जीत धरा
दय विप्रन को अति ही सुख मानो।
विप्रन काढ़ि दियो तुमको
निशि तादिन को विसरो खिसियानो॥

५४— १ 'ऐसे दीन सुदाम को देत तिरभुवन नाहिं (भा० प्र०)

सिन्धु हटाय करी तुम ठौर,
द्विजन्म सुभाव भली विधि जानो ।
सो तुम देत द्विजै सब लोक,
कियो तुमने अब कौन ठिकानो ॥५५ ब॥

भामिनि देव द्विजै सब लोक,
तजौं हठ मोर यहै मन भाई ।
लोक चतुर्दस की सुख सम्पति,
लागत विप्र बिना दुखदाई ॥
जाय रहौं उनके घर में,
औ करौं द्विज दम्पति की सेवकाई ।
तो मन माहि रुचै न रुचै,
सो रुचै हम कौं वह ठौर सुहाई ॥५५ स॥

भामिनि क्यों बिसरीं अबहीं,
निज व्याह समय द्विज की हितुआई ।
भूलि गईं द्विज की करनी,
जेहि के कर सों पतिया पठवाई ॥
विप्र सहाय भयो तेहि औसर,
को द्विज के समुहे सुखदाई ।
योग्य नहीं अर्द्धांङ्गनि है,
तुमको द्विज हेतु इती निठुराई ॥५५ द॥

नोट—ये चार छन्द प्राचीन प्रतियों में तो मिलते नहीं परन्तु बाद की प्रतियों में मिलते हैं। परन्तु शैली तथा शब्दावली देखकर यह कहना कठिन है कि ये कविवर नरोत्तमदास के ही हैं अथवा अन्य किसी कवि के।

यहि कौतुक के समय[१] में कही सेवकनि आय।
भई रसोई सिद्धि प्रभु, भोजन करिये आय[२] ॥५६॥
विप्र सुदामहि[१] न्हाय कर, धोती पहिरि बनाय।
सन्ध्या करि मध्यान्ह की, चौका बैठे जाय ॥५७॥

विप्र सुदामहि न्हाय कर=सुदामा जी को अपने हाथों से नहला कर। चौका=भोजन गृह में।

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता[१];
सोभा[२] सब जीती जिन सरद के चन्द की।

५६—१ लखि कै समय (ओ० प्र०)
२ जाय (,,)

५७—१—सहित असनान करि (ओ० प्र०)
सहित ही न्हान करि (ओ०प्र०)

५८—१ कन्द (भा० प्र०)
२ जीती जिन सोभा है सरद हू के चन्द की (ओं० प्र०)

दूसरे परोसा[३] भात सोंधो सुरभी को घृत,
फूले फूले फुलका प्रफुल्ल दुति मन्द की ॥
पापर मुंगोरीं बरा व्यंजन अनेक भांति[४],
देवता विलोकि रहे देवकी के नन्द की।
या विधि सुदामा जू को आछे कै जेंवायें प्रभु,
पाछे कै[५] पछ्यावरि[६] परोसी आनि कन्द की ॥५८॥

रूपे = चांदी। पायस = खीर। सोधो = सोंधा—भोजन में एक प्रकार की सुगन्धि। सुरभी गाय। फुलका = रोटियां। आछे = भली प्रकार। जेवायें = भोजन कराया। पछ्यावरि = जो वस्तु अन्त में परसी जाती है वह प्रायः कोई न कोई मीठी वस्तु होती है। भोजन के अन्त में मीठी वस्तु खाने से पाचन शक्ति ठीक रहती है।

सात दिवस यहि विधि रहे, दिन दिन आदर भाव।
चित्त चल्यो घर चलन को, ताको सुनहु हवाल ॥५९॥

ताको = उसका। हवाल = समाचार।

५८—३ पहिति (ओ० प्र०)
४ प्रीति (,,)
५ ते (,,)
६ पथ्यावरि (ओ० प्र०)

दाहिने वेद पढ़ैं चतुरानन,
सामुहें ध्यान महेस धरचो है।
बाएँ[1] दोउ कर जोरि सुसेवक,
देवन साथ सुरेस खरचो है॥
एतइ बीच अनेक लिए धन,
पायन आय कुबेर परचो है।
देखि विभौ अपनो सपनो,
बपुरो वह बांभन चौंकि परचो है॥६०॥

सामुहें = सन्मुख। सुरेस = सुरेश। एतइ बीच = इसी बीच। बपुरो = बेचारा।

देनो हुतो सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ।
मन[1] में गुनो गुपाल जू, कछु[2] ना दीनो हाथ॥६१॥

गाथ = बात। गुनो = विचार किया।

वह पुलकनि वह उठि मिलन, वह आदर की बात[1]।
यह पठवनि गोपाल की, कछू ना जानी जात॥६२॥

६०—१ बांए दुओ कर जोरि लिए (ओ० प्र०)

६१—१ चलती बेर (ओ० प्र०)
२ कछू न दीन्हों हाथ (ओ० प्र०)

६२—१ भाँति (ओ० प्र०)

घर घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज-समाज ॥६३॥

कर ओड़त फिरे = हाथ फैलाते फिरे अर्थात् भीख मांगते फिरे। तनक = जरा से।

हौं आवत[१] नाहीं हुतौ, वाहि पठायो ठेलि।
अब[२] कहि हौं समुझाय कै, बहु धन धरौ सकेलि ॥६४॥

बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप।
जैसो हरि हमको दियौ, तैसो पैहैं आप ॥६५॥

साप = श्राप।

नौ गुन धारी छगुन सों, तिगुने मध्ये जाय।
लायो चापल चौगुनी[१], आठौं गुननि[२] गंवाय[३] ॥६६॥

नौ गुन धारी = ब्राह्मण (नौ तार का यज्ञोपवीत धारण करने वाला) छगुन सों = ब्राह्मण के छः कर्म छोड़ कर। तिगुने मध्ये = तीन गुण (यजन, पटन, दान) वाले क्षत्रिय के यहाँ जाकर। चापल चौगुनी = अधिक मात्रा चपलता की ही ले

६४—१ हौं कब इत आवत हुतौ (ओ० प्र०)
२ कहि हौं धन-सों जाइ कै (ओ० प्र०)

६५—१ चतुर्गुणो (भा० प्र०)
२ गुणन (,,)
३ समाय (,,)

आया है। अर्थात् चित्त की स्थिरता को खोकर केवल अशांति ला सका।

और कहा कहिए जहाँ, कञ्चन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोको दियो न दाम ॥६७॥

निपट = अत्यन्त। हियो = हृदय। मोको = मुझको।

बहु भंडार रतनन भरे, कौन करे अब रोष।
लीग आपनो भाग को, काको दीजै दोस ॥६८॥

रोष = क्रोध। लाग आपने भाग को = 'भाग की लगाव' यह एक बोली का मुहावरा है जिसका अर्थ होता है भाग्य का दोष। काको = किसको।

इमि सोचत-सोचत झखत, आये[1] निज पुर तीर।
दीठि परी इक बार ही, हय गयन्द की भीर ॥६९॥

झखत = झीखते हुये। तीर = समीप। दीठि = दृष्टि। गयन्द = हाथी।

हरि दर्शन से दूर दुख, भयो गये निज देस।
गौतम ऋषि को नाउँ लै, कीन्हों नगर प्रवेस ॥७०॥

हरि = कृष्ण से मिलकर यही लाभ हुआ कि अपना स्थान भी चला गया।

६९—१ आयो (ओ० प्र०)

वैसोइ[१] राज समाज बनो[२] गज,
बाजि घने मन सम्भ्रम छायो ।
कैधौं परयो कहुँ मारग भूलि,
कि फैरि कै मैं अब द्वारिका आयो ।।
भौन बिलोकिबे को मन लोचत,
सोचत ही सब गांव मंझायो ।
पूछत पांड़े फिरे सब सों पर,
झोपरी को कहुं खोज न पायो ॥७१॥

सम्भ्रम=आश्चर्य । कैधौं=क्या । फेरि कै=फिर से । मंझायो=घूम डाला ।

देव नगर कै जच्छ पुर, हौं भटक्यो कित आय ।
नाम कहा यहि नगर को, सो न कहौ समुझाय ॥
सो न कहौ समुझाय, नगर बासी तुम कैसे ।
पथिक जहाँ झंखहिं[१] तहाँ के लोग अनैसे ॥
लोग अनैसे नाहिं, लखौ द्विज देव नगर तै[२] ।
कृपा करी हरि देव, दियौ है देव नगर कै ॥७२॥

७१—१ वैसई (ओ० प्र०) २ बने (ओ० प्र०) ३ वैसई कंचन कै सब धाय हैं; द्वारिकै माहि मनो फिर आयो (ओ० प्र०)

७२—१ सम्भ्रमहिं (ओ० प्र०)
२ कै ,,

जच्छपुर=यक्षपुर, कुबेर की नगरी। झखहिं=इधर-उधर टकराते फिरते हैं। अनैसे=खोटे, अविचारशील तै=तरफ, नगर की तरफ। कै=कर दिया।

सुन्दर महल मनि-मानिक जटित अति,
सुबरन सूरज-प्रकास मानो दै रह्यो।
देखत सुदामा जूको नगर के लोग धाये,
भेंटैं अकुलाय जोई सोई पग[1] छ्वै रह्यो॥
बांभनी के भूसन विविध विधि देखि कह्यो,
जैहौं हौं निकासो सो तमासो जग ज्वै रह्यो,
ऐसो दसा फिरी जब द्वारिका दरस पायो,
द्वारिका के[2] सरिस[3] सुदामपुर ह्वै रह्यो॥७३॥

मनि-मानिक=मणि माणिक। सुबरन=स्वर्ण। भेंटैं अकुलाय=आतुरता से मिल रहे हैं। छ्वै रह्या=स्पर्श कर रहे हैं। भूसन=भूषण। के सरिस=के सदृश।

कनक दण्ड कर में लिये, द्वारपाल हैं द्वार।
जाय दिखायो सबनि लै[1], या हैं महल तुम्हार॥७४॥

७३—१ पांय (ओ० प्र०, भा० प्र०)
२ ते (ओ० प्र०)
३ सरस (ओ० प्र०, भा० प्र०)
७४—१ मिल (भा० प्र०)

कही सुदामा हँसत हौं, ह्वै करि परम प्रवीन ।
कुटी दिखावहु मोहिं वह, जहाँ बाँभनी दीन ॥७५॥

द्वारपाल सो तिन कही, कहि पठवहु यह गाथ ।
आये विप्र महाबली; देखहु होहु सनाथ ॥७६॥

तिन = उन्होंने ।

सुनत चलो आनन्द युत, सब सखियन लै संग ।
नूपुर किंकिन दुन्दुभी, मनहु काम चतुरङ्ग ॥७७॥

काम चतुरङ्ग = कामदेव की चतुरङ्गिणी सेना ।

कही बाँभनी आय कै, यहै कन्त निज गेह ।
श्री जदुपति तिहुँ लोक में, कीन्हो प्रगट सनेह ॥७८॥

तिहुँ लोक = त्रैलोक में । सनेह = स्नेह, प्रेम ।

हमै कन्त जनि तुम कहौ, बोलौ वचन सँभारि ।
इहैं कुटी मेरी हती, दीन बापुरी नारि ॥७९॥

जनि = मत (निषेधात्मक) । दीन बापुरी नारि = गरीब स्त्री ।

मैं तो नारि तिहारिये, सुधि सँभारिये कन्त ।
प्रभुता सुन्दरता सबै, दई[१] रुक्मिनी कन्त ॥८०॥

८०—१ अद्भुत श्री भगवन्त (ह० प्र०, भा० प्र०)

तिहारियै = आप ही की। सुधि सँभारिये = याद तो कीजिये। रुक्मिनी कन्त = श्रीकृष्ण।

टूटी सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामे[1] परी दुःख काटै कहा हेम धाम री।
जेवर जराऊ[2] तुम साजे सब[3] अंग अंग,
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छामरी॥
तुम तो पटम्बर सो ओढ़े हौ किनारीदार,
सारी जरतारी, वह ओढ़ै कारी कामरी।
मेरी[4] पंडिताइनि तिहारे अनुहारि पतो मोको,
बतलाओ कहाँ पाँऊँ वाहि बामरी॥८१॥

मड़ैया = झोपड़ी। परी हुती याही ठौर = यहीं पड़ी हुई थी। हेम धाम = सोने के महल। छामरी = दुर्बल। पटम्बर = रेशमी साड़ी। बाम री = उस री को; बामा को।

८१—१ तामे परो दुःख कांटो (ओ० प्र०)

२—जड़ाऊ (भा० प्र०)

३—प्रति (ओ० प्र०)

४—मेरी वा पँड़ाइन तिहारी अनुहारि ही पै
विपदा सहाई वह पाई कहाँ बामरी॥ (ओ० प्र०)

ठाढ़ो ह्वै पँड़ाइन कहत मञ्जु भावन[१] सों,
प्यारे[२] परौं पाइन तिहारोई जु[३] घरु है।
आए चलि हरौं श्रम कीन्हों तुम भूरि दुख,
दारिद गमायो यों हँसत गह्यो करु है॥
रिद्धि सिद्धि दासी करि दीन्हीं अविनासी कृस्न,
पूरन प्रकासी, कामधेनु कोटि बरु है।
चलो पति भूलो मति तुम्हैं दीन्हों जदुपति,
सम्पति सो लीजिये समेत सुरतरु है॥८२॥

मञ्जु भावन सों=कोमल भावनाओं से प्रेरित होकर। जु=यह। बरु=सुरतरु=कल्पवृक्ष।

समुझायो निज कन्त को, मुदित गई लै गेह।
अन्हवायो तुरतहिं उबटि, सुचि सुगन्ध सो देह॥८३॥

उबटि=उबटन; उद्वर्तन लगाकर। सुचि=शुचि।

पूज्यो अधिक सनेह सों, सिंहासन बैठाय।
सुचि सुगन्ध अम्बर रचे, वर भूसन पहिराय॥८४॥

अम्बर=कपड़े। भूसन=भूषण।

८२—१ भाइन (ओ० प्र०)
,, साजन (भा० प्र०)
२ राजा ,,
३ चो ,,

सीतल जल अँचवाइ कै, पानदान धरि पान।
धरचो आय आगे तुरत, छवि रवि-प्रभा समान ॥८५॥

करहिं[1] चौंर चहुं ओर ते, रम्भादिक सब नारि।
पतिव्रता अति प्रेम सों, ठाढ़ी करैं बयारि ॥८६॥

चौंर = मुछल। बयारि = हवा।

स्वेत छत्र की छांह में, राजत शक्र समान।
बाहन गज रथ तुरँग वर, अरु अनेक सुभ बान[1] ॥८७॥

राजत = शोभायमान। शक्र = इन्द्र। बान = वाहन।

कामधेनु सुरतरु सहित, दीन्हीं सब बलबीर।
जानि पीर गुरु बन्धु हरि, हरि लीन्हीं सब पीर ॥८८॥

विविधि भांति सेवा करी, सुधा पियायो बाम।
अति विनीत मृदु वचन कहि, सब पूरो मन काम ॥८९॥

लै आयसु, तिय स्नान करि, सुचि सुगंध सब लाइ।
पूजी गौरि सोहाग हित; प्रीति सहित सुख पाइ ॥९०॥

आयसु = आज्ञा। लाई = लगाकर। सोहाग = सौभाग्य।

८६—१ करहिं (ओ० प्र०)

८७—१ जाम (ओ० प्र०)

षटरस विविध[१] प्रकार के, भोजन रचे बनाय।
कञ्चन थार मँगाय के, रचि[२] रचि[२] धरे[३] बनाय ॥९१॥
चन्दन चौकी डारि कै, दासी परम सुजान।
रतन जटित भाजन कनक, भरि गंगाजल आन ॥९२॥
घट[१] कञ्चन को रतन युत, सुचि सुगन्धि जल पूरि।
रच्छा धान समेत कै, जल, प्रकास भरपूरि ॥९३॥

युत = युक्त। कै = करके।

मंगल घट का विस्तृत वर्णन है।

रतन जटित पीढ़ा कनक, आन्यो[१] बैठन काम।
मरकत मनि चौकी धरी, कछुक दूरि छवि धाम ॥९४॥

पीढ़ा = पटा अथवा लकड़ी का बना हुआ आसन।

चौकी लई मँगाय कै, पग धोवन के[२] काज।
मनि पादुका पवित्र[३] अति, धरी[४] विविध विधि साज ॥९५॥

९१—१ चारि (ओ० प्र०) २ तामे (ओ० प्र०) ३ धर्‌यो (ओ० प्र०)

९३—१ कूजा (ओ० प्र०)

९४—१ धर्‌यो (ओ० प्र०)

९५—१ के (ओ० प्र०)
२ को पाथ (ओ० प्र०)
३—विचित्र (ओ० प्र०)
४—सलिल के साथ (ओ० प्र०)

चलि भोजन अब कीजिए, कह्यो दास मृदु भाखि।
कृस्न कृस्न सानन्द कहि, धन्य भरी हरि साखि ॥९६॥

भाखि = कह कर। भरी हरि साखि = हरि को साक्षी करके सुदामा जी ने धन्य धन्य कहा।

बसन उतारे जाइ कै, धोवत चरन सरोज।
चौकी पै छबि देत यों, जनु तनु धरे मनोज ॥९७॥

पहिरि पादुका बिप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय।
रति ते अति छबि आगरी, पति सों हँसि मुसकाय ॥९८॥

पादुका = खड़ाऊँ।

बिबिध भाँति भोजन धरे, व्यंजन चारि प्रकार।
जोरी पछिओरी सकल, प्रथम कहे नहिं पार ॥९९॥

हरिहिं समर्पो कन्त अब, कही मन्द हँस बाम।
करि घंटा को नाद त्यों, हरि समर्पि लै नाम ॥१००॥

अगिनि जेंवाय बिधान सों, बैस्व देव करि नेम।
बली काढ़ि जेंवन लगे, करति पवन तिय प्रेम ॥१०१॥

९६—"चलिए भोजन करन कों", कह दासी मृदु भाखि।
उठे कृस्न सानन्द कहि, धन्य धन्य हरि साख ॥

विधान सों = नियमपूर्वक । तिय = पत्नी ।

बार बार पूछति प्रिया, लीजै जौ रुचि होय ।
कृस्न कृपा पूरन सबै, अबैं परोसो सोय ॥१०२॥

अबैं = अभी ।

जेंइ चुके अँचवन लगे, करन गए बिस्राम ।
रतन जटित पलका कनक, बुनी सुरेसम दाम ॥१०३॥

जेंइ चुके = भोजन कर चुके । अँचवन = हाथ धोना ।

बुनी = बुनी हुई । दाम = रस्सी ।

ललित बिछौना, बिरचि कै, पाँयत कसि के डोरि ।
राखे बसन सुसेवकनि, रुचिर अतर सों बोरि ॥१०४॥

पाँयत = पैर की तरफ ।

पानदान नेरे धर्‌यो, भरि बीरा छबि धाम ।
चरन धोय पौढ़न लगे, करन हेत बिश्राम ॥१०५॥

नेरे = समीप ।

कोउ चँवर कोउ बीजना, कोउ सेवत पद चारु ।
अति बिचित्र भूसन सजे, गजमोतिन के हारु ॥१०६॥

बीजना = पंखा । गजमोतिन = गजमुक्त ।

करि सिंगार पिय पै गई, पान खाति मुसुकाति ।
कह्यो कथा सब आदि तें, किमि दीन्हों सौगाति ॥१०७॥

सौगाति = विभूति ।

कही कथा सब आदि ते, राह चले की पीर ।
सोवत जिमि ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर ॥१०८॥

तीर = किनारे ।

गए द्वार जिमि भाँति सों, सो सब करी बखान ।
कहिन जाय मुख लाख सों, कृस्न मिले जिमि आन ॥१०९॥

करी बखान = वर्णन किया । जिमि = जिस प्रकार ।

कर गहि भीतर लै गए, जहाँ सकल रनिवास ।
पग धोवत को आपुही, बैठे रमा निवास ॥११०॥

देखि चरन मेरे चल्यो, प्रभु नयनन ते बारि ।
ताही सों धोए चरन, देखि चकित नर नारि ॥१११॥

बारि = जल बह चला अर्थात् उनके नेत्रों में अश्रु भर आए ।

बहुरि कही श्रीकृस्न जिमि, तन्दुल लीन्हें आप ।
मेरे हृदय लगाइ कै, मेटे भ्रम सन्ताप ॥११२॥

१०७—१ यह भांति (ओ० प्र०)

१०९—जो (ओ० प्र०)

बहुरि = उसके उपरान्त । जिमि = जिस प्रकार ।

बहुरि कही जेवनार सब, जिमि कीन्हों बहु भाँति ।
बरनि कहाँ लगि को[1] कहौ, सब व्यंजन की पाँति ॥११३॥

जेवनार = भोज । व्यञ्जन = विविध पकवान तथा भोजन-सामग्री । पाँति = पंक्ति ।

जादिन[2] अधिक सनेह सों, सपन दिखायो मोहि ।
सो देख्यो परतच्छ ही, सपन न निसफल होहिं ॥११४॥

बरनि कथा यहि विधि सबै, कह्यो आपने मोह ।
कृस्न कृपानिधि भगत हित, चिदानन्द सन्दोह ॥११५॥

सन्दोह = समूह ।

साजे सब साज बाज बाजि गज राजत हैं,
विविध रुचिर रथ पालकी बहल हैं ॥
रतन जटित सुभ सिंहासन बैठिबे को,
चौक प्रति कामधेनु कल्पतरु लहल हैं ॥
देखि-देखि भूषण बसन दासि दासन के,
सुखपाल सासन के लागत सहल हैं ॥

११३—१ हौं हौं (ओ० प्र०)

११४—१ दिन प्रति (ओ० प्र०)

सम्पति सुदामाजू को कहां लौं दई है प्रभु,
कहां लौं गिनाऊँ जहां कञ्चन महल हैं ॥११६॥

साजबाज=सजावट । बाजि गज=घोड़े और हाथी। राजत हैं=सुशोभित होते हैं। बहल=एक प्रकार की बैलगाड़ी-जिसका उपयोग आज भी संयुक्त प्रान्त के देहातों में किया जाता है। चौक प्रति=घर का आंगन, चौक प्रति का अर्थ होगा आंगन में। लहल हैं=लहलहाते हैं अर्थात् अवस्थित हैं। कञ्चन=सुवर्ण।

बाजिसाला गजसाला दीन्हें गजराज खरे,
गजराज महाराज राजन-समाज[1] के।
बानिक[2] विविध बाने[3] मन्दिर कनक सो हैं;
मानिक[4] जरे से मन मोहैं देवतान के।
हीरालाल ललित झरोखन में झलकत,
झिमि झिमि झूमत झुलत[5] मुकतान के।

११७—१ समान (ओ० प्र०)
२ बानक (ओ० प्र०)
३ बने (ओ० प्र०)
४ मीन जरे मन मोहैं देवतान के (ओ० प्र०)
५ भुल है (ओ० प्र०)

जानी नहीं विपत सुदामाजू की कहाँ गई,
देखिये विधान जदुराय के सुदान के ॥११७॥

खरे=उत्तम। राजत समाज=जो केवल राजाओं की समाज में ही मिल सकते हैं। बानिक=प्रकार। बाने=बनावट। मानिक जरे से मन मोहैं देवतान के=मानों माणिक से जड़े हुये हैं। झरोखन=घरों में वायु और प्रकाश के लिये जो मार्ग रखा जाता था उसे झरोखा कहते थे। झलकता=चमकते हैं। झूमक=गुच्छे।

कहूँ सपनेहूँ सुबरन के महल होते,
पौर मन मण्डप कलस कब धरते हैं?
रतन जटित सिंहासन पर बैठिबे को;
खरे हैं खवास मोपै चौंर कब ढरते हैं?
देखि राज सामा निज बामां सो सुदामा कहैं;
कब ये भण्डार मेरे रतनन से भरते?
जो पै पतिब्रता न देतो उपदेस तू तौ,
एती कृपा मो पै कब द्वारिकेस[1] करते?॥११८॥

पौर=द्वार। खवास=सेवक। मो पै=मेरे ऊपर। राज

११८—१ जदुपति जू (आ० प्र०)

उठे पहिर अम्बर रुचिर, सिंहासन पर आय।
बैठे प्रभुता देखि कै, सुरपति रह्यो लजाय ॥११९॥

कै वह टूटी सी छान हती,
कहँ कञ्चन के अब धाम सुहावत।
कै पग में पनहीं न हती,
कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत॥
भूमि कठौर पै राति कटै,
कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कहि जुरतो नहिं कोदौ सवाँ,
प्रभु के परताप ते दाख न भावत ॥१२०॥

छान = झोपड़ी। हती = थी। महावत = हाथी को देखने वाला। दाख = मेवा।

धन्य-धन्य जदुवंस मनि, दोनन पै अनुकूल॥
धन्य सुदामा सहित तिय, कहि सुर बरसहिं फूल॥१२१॥

———